इकाई 3 गीता में अध्याय विभाजन और संक्षिप्त विवरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गीता में अध्याय विभाजन

- 3.2.1 अर्जुन विषादयोग
- 3.2.2 सांख्ययोग
- 3.2.3 कर्मयोग
- 3.2.4 ज्ञानकर्म संन्यास योग
- 3.2.5 कर्म संन्यास योग
- 3.2.6 आत्मसंयम योग
- 3.2.7 ज्ञान–विज्ञान योग
- 3.2.8 अक्षरब्रह्म योग
- 3.2.9 राजविद्याराजगुह्ययोग
- 3.2.10 विभूति योग
- 3.2.11 विश्वरूपदर्शन योग
- 3.2.12 भक्ति योग
- 3.2.13 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग
- 3.2.14 गुणत्रयविभाग योग
- 3.2.15 पुरुषोत्तम योग
- 3.2.16 दैवासुरसम्पद्विभाग योग
- 3.2.17 श्रद्धात्रयविभाग योग
- 3.2.18 मोक्षसंन्यास योग

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भगवद्गीता का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अष्टादश अध्यायों की विषयवस्तु का विषयज्ञान हो सकेगा।
- आत्मा की अमरता का ज्ञान हो सकेगा।
- निष्काम कर्म के बारे में जान सकेंगे।
- आत्मज्ञान हो सकेगा।

- विभूतियों के बारे में जान सकेंगे।
- गुणत्रय का ज्ञान हो पाएगा।
- श्रद्धा के विभाग को ज्ञान पाएंगे।
- मोक्ष के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाइयों में आपने भगवद्गीता में प्रतिपादित मुख्य विषय को पढ़ा व समझा। आप यह जानते हैं कि भगवद्गीता सम्पूर्ण विश्व साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अट्ठारह अध्यायों में बंटा हुआ है और इन अध्यायों के नाम हैं – अर्जुनविषाद–योग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसंन्यासयोग, कर्मसंन्यासयोग, आत्मसंयमयोग, ज्ञान–विज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्मरोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शनयोग, भक्ति–योग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग, दैवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग, मोक्षसंन्यासयोग। इस इकाई में इन्हीं अध्यायों का हम संक्षिप्त रूप से अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में हम जानेगें कि कैसे अर्जुन कुरूक्षेत्र के युद्ध में अपने गुरुजन, भाई, पितामह आदि सभी को देखकर दुःखी हो जाता है और युद्ध के लिए मना कर देते है फिर कैसे श्री कृष्ण जी अर्जुन को विभिन्न विषयों जैसे सांख्य योग, कर्म के सिद्धान्त, आत्मा की अमरता, ज्ञान, विज्ञान, भक्तियोग, पुरुषोत्तम योग आदि का ज्ञान कराते हुए, अपने विश्वरूप का ज्ञान कराते हुए श्रद्धा और मोक्ष का भी ज्ञान प्रदान किया है जिससे अर्जुन धर्मयुद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है।

यहाँ पर श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से हम सभी को भी यही उपदेश देना चाहते है कि कैसे निष्काम कर्म को करते हुए हम अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकते हैं। अतः इस इकाई में हम भगवद्गीता के सभी अध्यायों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे और ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। आज हम सभी इस कर्मभूमि पर अर्जुन है। जो अपने कर्त्तव्यपालन में मूढ बने हुए है। भगवद्गीता के ज्ञान से अच्छे–बुरे कर्मों का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को उच्च बना सकेंगे।

3.2 गीता में अध्याय विभाजन

गीता संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का अनमोल ग्रन्थ है। यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के मुख रूपी अरविन्द से निकली हुई दिव्य वाणी है। इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक है। इसके संकलनकर्ता महर्षि वेदव्यास है। आज गीता का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। भगवद्गीता के 18 अध्यायों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है –

3.2.1 अर्जुन विषादयोग

सम्पूर्ण भगवद्गीता अष्टादश अध्यायों में रचित है प्रत्येक अध्याय ही एक–एक योग है। गीता के प्रथम अध्याय का नाम है – अर्जुन विषाद योग है, जिसमें 47 श्लोक है। गीता की शुरूआत में पृष्ठभूमि एक युद्ध क्षेत्र है। यहाँ पर श्रीकृष्ण अधर्म का नाश तथा धर्म की रक्षा करने के लिए अवतार लिया हुआ है। युद्ध क्षेत्र में कौरव और पाण्डव अपने राज्य के अधिकार को लेकर युद्ध करने के लिए खड़े हुए है। कौरवों के पास

एकादश अक्षौहिणी सेना और पाण्डवों के पास सप्त अक्षौहिणी सेना विद्यमान है। जो सभी कुरूक्षेत्र के युद्धभूमि पर खड़े हुए है। शारीरिक बल के प्रयोग से ही इस युद्ध का निर्णय होना है। जब अर्जुन दोनों पक्ष की सेनाओं के बीच में खड़े होते है तब वह नजर उठाकर देखता है तो उसे अपने सगे सम्बन्धी दिखाई देते हैं, जिस कारण अर्जुन का मन दुःखी हो जाता है और वह कहता है कि अपने भाई, गुरु आदि का वध करके मुझे राज्य नहीं चाहिए। मैं तो भिक्षा मांग कर अपना जीवन व्यतीत कर लूंगा लेकिन अपनों को नहीं मारूंगा। ऐसा कहकर अर्जुन अपने धनुष को नीचे रखकर बैठ जाता है। तब भगवान श्रीकृष्ण 'किं कर्त्तव्यविमूढ' अर्जुन को जो उपदेश देते है वहीं अष्टादश अध्याय वाली श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित है।

संजय उवाच –

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।। श्लोक 47

अर्जुन के अनुसार युद्ध करना सम्पूर्ण अनर्थो का कारण है। युद्ध करने से कुटुम्बियों का नाश होगा और परलोक में नरक की प्राप्ति होगी आदि बातों को युक्ति और प्रमाण से कहकर शोक से अत्यन्त व्याकुल मन वाले युद्ध न करने का पक्का निश्चय कर लिया। जिस रणभूमि में वे हाथ में धनुष लेकर उत्साह के साथ आए थे, उसी रणभूमि में उन्होंने अपने बाएं हाथ से गाण्डीव धनुष को और दायें हाथ से बाण को नीचे रख दिया और स्वयं रथ के मध्य भाग में अर्थात् जहाँ पर दोनों सेनाओं को देखने के लिए खड़े थे, वहीं पर ही शोकमुद्रा में बैठ गए।

भगवान ने अर्जुन को भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण को और कुरूवंशियों को देखने के लिए कहा जिससे उन्हें देखकर अर्जुन के अन्दर छिपा हुआ मोह जागृत हो गया। मोह के जागृत होने पर अर्जुन कहते हैं कि इस युद्ध में दुर्योधन आदि हमारे कुटुम्बी मारे जाएंगे और कुटुम्बियों का मरना ही बड़े नुकसान की बात है।

3.2.2 सांख्य योग

गीता के द्वितीय अध्याय का नाम सांख्य योग है। सांख्य योग में विवेक की बड़ी आवश्यकता है और सांख्य योग से ही भगवान् ने अपना उपदेश आरम्भ किया है। अतः इस अध्याय का नाम सांख्य योग रखा गया है। इस अध्याय में 72 श्लोकों का समावेश है। यहाँ सांख्य शब्द का अर्थ है – ज्ञान और योग शब्द का अर्थ है – कर्म। ज्ञान और कर्म पर विशेष रूप से चर्चा होने के कारण भी इस अध्याय का नाम सांख्य योग रखा गया है। अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए इस अध्याय में विशेषतया श्रीकृष्ण के द्वारा आत्मतत्व का उपदेश दिया गया है। आत्मा और शरीर की नित्यता और अनित्यता का वर्णन किया गया है। कहा भी गया है –

वांसांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। श्लोक 22

मनुष्य जैसे पुराने कपड़ों को छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही अर्थात् आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीरों में चली जाती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।। श्लोक 23

शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती अर्थात् जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग के सम्बन्ध में भी उपदेश दिये है। यथा –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। श्लोक 2/47

अर्थात् कर्त्तव्य कर्म करने में तेरा अधिकार है, फल में तेरा अधिकार नहीं है। अतः तू कर्मफल का हेतु भी मत बन और तेरी अकर्मण्यता से भी आसक्ति न हो। निष्काम कर्म योग नामक उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भले ही लक्ष्य करके प्रकट किया है, जबकि यह समस्त बुद्धिजीवी सद् असत् विवेकी मनुष्य जाति के लोग इनसे विशेष रूप से सीख लेकर उपकृत होंगे।

ज्ञान श्रेष्ठ है या कर्म श्रेष्ठ है ? इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में इस अध्याय का महत्वपूर्ण योगदान है। निष्काम कर्मयोग के साथ ज्ञान का मेल करके निष्काम भक्ति रूप से अमृत रस से सिंचित होकर यह अध्याय मंगलमय दीपशिखा की तरह मनुष्यों के जीवन को आलोकित कर रही है। निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों के संयोग होने पर परमलक्ष्य स्थितप्रज्ञ एवं आत्मस्वरूप साक्षात्कार रूपी अवस्था को प्राप्त होता है इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। यह ब्राह्मी स्थिति ही मोक्ष है। इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद ही मनुष्य निष्काम भाव से अपने वर्ण व आश्रम के अनुसार शास्त्रों में बताए गए कर्मों को करके अन्त में ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त करता है। इस अध्याय में बीसवें श्लोक के बाद ही श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद आरम्भ होता है।

3.2.3 कर्मयोग

गीता के तृतीय अध्याय का नाम 'कर्मयोग' है। इसमें 43 श्लोक है। कर्मयोग का जितना विषाद वर्णन तीसरे अध्याय में है, उतना गीता के अन्य अध्यायों में नहीं है। तीसरे अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने प्रश्न किया कि आपके मत में जब बुद्धि श्रेष्ठ मान्य है, तो फिर आप मुझे घोर कर्म (युद्ध) में क्यों लगा रहे हो ? इसके उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने चौथे श्लोक से 29वें श्लोक तक विविध प्रकार से कर्त्तव्य कर्म करने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए यह सिद्ध किया है कि कर्त्तव्य कर्म करने से ही समबुद्धि प्राप्त होती। फिर तीसवें श्लोक में भगवत् निष्ठा के अनुसार कर्त्तव्य कर्म करने की विशेष विधि बतायी कि विवेकपूर्ण सम्पूर्ण कर्मो को मेरे अर्पण करके तथा निष्काम, ममता रहित होकर, सन्ताप रहित होकर शास्त्रों में बताए कर्त्तव्य कर्मो को करना चाहिए। कर्त्तव्य कर्म की इस विधि को अपना मत कहते हुए भगवान् ने 31–32वें श्लोकों में अन्वय और व्यतिरेक विधि से अपने इस मत की पुष्टि की है। 35वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'** अर्थात् अपने धर्म में स्थित रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मरना भी श्रेष्ठ है। इस पर अगले श्लोक में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि मनुष्य न चाहते हुए भी किससे प्रेरित होता हुआ पाप कर्म करता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने 'काम' अर्थात् कामना को ही सारे पापों, अनर्थो का हेतु बताकर अन्त में कामरूप शत्रु को मार डालने की आज्ञा दी है।

3.2.4 ज्ञानकर्म संन्यास योग

इस चतुर्थ अध्याय में 42 श्लोक है। इसका नाम तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए कर्मयोग और सांख्ययोग का वर्णन होने से इस चौथे अध्याय का नाम ज्ञानकर्म संन्यास योग है। इसमें भगवान् ने अपने अवतरित होने का रहस्य और तत्व के सहित कर्मयोग तथा संन्यास योग का अर्थ तथा परमात्मा के तत्व का यथार्थ रीति से वर्णन किया गया है। इसमें प्रारम्भ में कर्मयोग की प्रशंसा की गई है। इसी अध्याय में चार वर्णों की उत्पत्ति, जन्म, कर्मरूपी, लीलातत्व तथा कर्म, अकर्म और विकर्म का विश्लेषण किया है। ज्ञान क्या है ? ज्ञान लाभ के उपाय, फल और अधिकारी का विचार, कर्मभेद, वर्णभेद, ज्ञान प्राप्ति के आन्तरिक व बाहरी साधन आदि अनेक आध्यात्मिक विषयों का उपदेश दिया है। निष्काम कर्म योग के द्वारा ही ज्ञान योग को प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि भगवान् स्वयं कहते हैं कि –

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। श्लोक 33

अर्थात् हे अर्जुन समस्त कर्म और पदार्थ ज्ञान के उत्पन्न होने पर समाप्त हो जाते है। कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान अलग–अलग नहीं है अपितु परस्पर एक–दूसरे के सहायक है। इस अध्याय में वर्ण विभाग का भी वर्णन किया गया है। यथा –

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। श्लोक 13

अर्थात् मेरे द्वारा गुणों और कर्मों के विभागपूर्वक चारों वर्णों की रचना की गई है। श्रीकृष्ण जी के लिए कुछ भी अप्राप्त नहीं है, वह भी निर्लिप्त होकर कर्म का सम्पादन करते हैं। इससे कर्म करने की पद्धति का यथार्थ संकेत मिलता है। इसके अनन्तर बाह्य कर्म, विविध लाक्षणिक यज्ञों की विशेषताओं का वर्णन, ज्ञान क्या है ? ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता व ज्ञान लाभ का क्या उपाय है ? ज्ञान लाभ का फल और इसके अधिकारी कौन है ? आदि अनेक तत्वों की आलोचना इस अध्याय में की गई है। यज्ञों का वर्णन करने के पश्चात् इसके भेद बतलाए गए है तथा इसमें द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ को उत्तम बतलाया गया है।

3.2.5 कर्म संन्यास योग

इस अध्याय में कर्मयोग और सांख्य योग दोनों का ही वर्णन हुआ है, इसलिए इस अध्याय का नाम कर्मसंन्यास योग है। पंचम अध्याय 29 श्लोक से युक्त है। इसमें अर्जुन भगवान् से प्रश्न पूछते है कि सांख्य योग और कर्मयोग दोनों में से कौन सा श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर देते हुए श्री कृष्ण कहते है कि दोनों ही श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी मार्ग है। परन्तु कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग भी श्रेष्ठ है। इस अध्याय के 10वें और 11वें श्लोक में बताया गया है कि जो भक्त योगी सम्पूर्ण कर्मों को भगवान में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कर्म को करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता और जो कर्म योगी है वह आसक्ति का त्याग करके केवल इन्द्रियाँ, शरीर, मन, बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं। आगे कहा गया है कि अज्ञान के द्वारा जब ज्ञान को ढक लिया जाता है तब जीव को मोह–माया घेर लेती है। इसलिए ज्ञान का महत्व भी बतलाया है और ज्ञान योग के एकान्त साधन का भी वर्णन किया गया है। 22वें श्लोक में भी कहा गया है –

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। श्लोक 22

अर्थात् हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग ही आदि अन्त वाले दुःख का कारण है और बुद्धिमान विवेकशील मनुष्य को इसमें आसक्त नहीं होना चाहिए। योगी के विषय में भी कहा गया है कि जो काम क्रोध के वेग को सहन कर लेता है वही पुरुष योगी और सुखी है। कर्म त्याग गीता का उपदेश नहीं है अपितु अपने धर्म का पालन और कर्मफल त्याग ही गीता का उपदेश है क्योंकि कर्म को त्याग करके संसार में रहना संभव ही नहीं है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यही है कि फल की आसक्ति ही बन्धन का कारण है और फल का त्याग ही यथार्थ संन्यास और आसक्ति का त्याग ही मोक्ष है।

3.2.6 आत्मसंयम योग

आत्मसंयम अर्थात् मन का संयम करने से ध्यानयोगी को योग अर्थात् समान भाव का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'आत्मसंयमयोग' रखा गया है। इस अध्याय में 47 श्लोक है। इस अध्याय के शुरूआत में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति कर्मफल का आश्रय न लेता हुआ कर्त्तव्य कर्म को करता है, वहीं संन्यासी तथा योगी है, केवल अग्नि का या क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं कहलाता। इसमें यह भी बताया गया है कि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है तथा स्वयं ही अपना शत्रु भी है। वह कैसे अपना मित्र और शत्रु है यह बताते हुए कहते हैं कि –

बन्धुरात्माऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।। श्लोक 6

अर्थात् जिसने अपने आपको जीत लिया है अर्थात् असत् पदार्थों का त्याग कर दिया है। वह स्वयं ही अपना बन्धु है तथा जिसने अपने आपको नहीं जीता है ऐसे अनात्मा का आत्मा ही शत्रु की तरह बर्ताव करता है। इस अध्याय में परमात्मा ने ध्यान योग के लिए भी प्रेरणा दी है, ध्यान योग करने वाले को शुद्ध भूमि पर जिस पर क्रमशः कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हुए है, जो न तो बहुत ऊँचा हो ओर न ही बहुत नीचा। ऐसे आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों को वश में करके, मन को एकाग्रचित करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान करता हुआ योगी अपने आपको सदा परमात्मा में लगाता हुआ पापरहित होकर सुखपूर्वक ब्रह्मप्राप्ति रूप अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है।

श्रीकृष्ण ने सांख्य योग और कर्मयोग में से कर्मयोग को श्रेष्ठ बताया और जो तत्व कर्मयोग से प्राप्त होता है वही ध्यानयोग से भी प्राप्त होता है – इसी बात को लेकर ध्यान योग का वर्णन किया गया है। ध्यान योग में मन की चंचलता बाधक होती है – इसी बात को लेकर अर्जुन ने मन के विषय में प्रश्न किया। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा है कि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में किया जा सकता है। फिर अर्जुन ने पूछा कि योग का साधन करने वाला अगर अन्त समय में योग से विचलित हो जाए तो उसकी क्या दशा होगी ? इस पर योगभ्रष्ट गति का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह योगभ्रष्ट पुण्य कर्म करने वालों के लोकों को प्राप्त करता है, फिर वहाँ बहुत वर्षों तक रहकर, फिर इस धरती पर शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेता है और अन्त में योग की विशेष महिमा कहकर अर्जुन को योगी बनाने के लिए स्पष्ट रूप से आज्ञा दी।

3.2.7 ज्ञान–विज्ञान योग

इस सातवें अध्याय में ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया गया है। भगवान् इस सम्पूर्ण जगत् के महाकारण है – ऐसा दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना 'ज्ञान' है। ऐसे ही भगवान् के सिवाय कुछ भी नहीं है – ऐसा अनुभव हो जाना ही 'विज्ञान' है। ज्ञान और विज्ञान से परमात्मा के साथ नित्ययोग का अनुभव हो जाता है अर्थात् 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं' इस परम प्रेमरूप नित्य सम्बन्ध की जागृति हो जाती है। इसलिए इस सातवें अध्याय का नाम ज्ञान विज्ञान योग रखा गया है। यह अध्याय 20 श्लोकों में वर्णित है।

भगवान् ने इस अध्याय में पहले परिवर्तनशील को 'अपरा' और अपरिवर्तनशील को 'परा' नाम से कहा है। फिर इन दोनों के संयोग से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति बतलायी है और अपने को सम्पूर्ण संसार का प्रभव और प्रलय बताया है। इसी प्रसंग में भगवान् ने 17 विभूतियों के रूप में कारणरूप से अपनी व्यापकता बताई है। जो योगी निरन्तर ईश्वर चिन्तन करते हुए श्री भगवान् वासुदेव को विशेष रूप से जान सके वही 'युक्ततम' है। इस अध्याय में भगवान् के विमुख ओर सम्मुख होने का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि जड़ता की तरफ वृत्ति रखने से मनुष्य बार–बार जन्म लेता है और मरता रहता है। अगर वे जड़ता से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जाते है, तो वे सगुण–निराकार और सगुण साकार ऐसे भगवान् के समग्ररूप को जानकर अन्त में भगवान् को ही प्राप्त जाते हैं।

3.2.8 अक्षरब्रह्म योग

गीता का आठवां अध्याय 28 श्लोकों से सुशोभित है। 'अक्षर' और ब्रह्म दोनों ही शब्द भगवान् के निर्गुण निराकार, सगुण निराकार और सगुण साकार – इन तीनों स्वरूपों के वाचक है। इन तीनों स्वरूपों में से किसी भी स्वरूप का चिन्तन करने से परमात्मा के साथ योग हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'अक्षर ब्रह्मयोग' रखा गया है। इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप के वर्णन के प्रसंग में ब्रह्मतत्व ब्रह्मोपासना और अन्तकाल में ईश्वर चिन्ता की विशेष रूप से आलोचना हुई है। भगवान् ने ईश्वर परायण होने का उपदेश दिया है। श्री कृष्ण जी समझाते हुए कहते है कि मृत्यु काल में व्यक्ति जिस भाव को याद करते हुए अपनी देह को छोड़ता है तो उसी भाव को प्राप्त हो जाता है। अतः अन्तिम समय में जो मुझे याद करता है वह मुझे ही प्राप्त करता है तथा मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन के प्रति भी श्री कृष्ण भगवान् का स्पष्ट आदेश है। 'मामनुस्मर युध्य च' यह भाव केवल भगवान की भक्ति से ही संभव हो सकता है। श्री कृष्ण जी ने कहा है कि जो भक्त विषयों की चिन्ता को छोड़कर सदा भगवान का स्मरण करता है उसे अनायास ही उनका लाभ होता है और उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। इसके बाद श्री कृष्ण भगवान् ने कहा है कि जो इन्द्रिय संयम द्वारा प्राण को भ्रू–युगल के बीच में स्थापित करके मन को संयमित रखते हुए और समानतत्व की चिन्ता करते हुए देह का त्याग करता है तो उसे परमगति प्राप्त होती है। इस अध्याय का अन्तिम श्लोक विशेष भावपूर्ण तथा गम्भीर है। यथा –

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।। **श्लोक 28**

अर्थात् जो योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर, वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो–जो पुण्यफल कहे गये हैं, इन सभी पुण्यफलों का जो अतिक्रमण या उल्लंघन चिन्तन करना है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

3.2.9 राजविद्याराजगुह्ययोग

इस अध्याय में भगवान् ने जो 'मया ततमिदं सर्वम्' आदि उपदेश दिया है वहीं सब विद्याओं का राजा है और जो भगवान् ने अपने आपको प्रकट करके अर्जुन को अपने शरण होने और अपने में मन लगाने के लिए कहा है। वह सम्पूर्ण गोपनीय भावों का राजा है। इन दोनों राजविद्या और राजगुह्य को तत्त्व से समझ लेने पर योग का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'राजविद्याराजगुह्ययोग' रखा गया है। इस अध्याय में 34 श्लोक है।

इस अध्याय में विशेष रूप से 'ईश्वरीय योग–सामर्थ्य, भगवान् के भक्त, देवी सम्पदा सम्पन्न और अभक्त आसुरी सम्पदा मुक्त, ईश्वर का विश्वानुगत् भाव, योगक्षेम और भगवद्भक्ति के छल का स्वरूप, श्री भगवान भक्ति के लिए इच्छुक, ईश्वर में एकान्त शरणागति ही भक्ति लाभ का श्रेष्ठ उपाय आदि विषयों पर विस्तार से विवेचना हुई है, इस अध्याय में श्रेष्ठ विद्या और उसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन भी बताया गया है। अध्याय के अन्त में भी भगवान् कहते हैं कि मेरी शरणागति से स्त्री, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल आदि किसी को भी परमगति की प्राप्ति संभव हो सकती है। 33वें और 34वें श्लोक में पुण्यशाली ब्राह्मण और राजर्षि भक्तजनों की बड़ाई करके शरीर की अनित्यता को स्पष्ट किया है।

3.2.10 विभूति योग

गीता के दसवें अध्याय में 42 श्लोक है। इस अध्याय में प्रधान रूप से ईश्वर की विभूतियों का ही वर्णन है। जहाँ कहीं पर जो कुछ भी विशेषता इन श्लोकों में दिखाई पड़ती है, वह सब उस ईश्वर की ही विभूति है। ऐसा मानने से भगवान् के साथ योग के सम्बन्ध का अनुभव हो जाता है। इसलिए दसवें अध्याय का नाम 'विभूतियोग' है। इस अध्याय में विशेष रूप से भगवान् की विभूतियों का वर्णन किया गया है। ईश्वर की सबसे बड़ी विभूति यह है कि वह विश्वानुगत होकर भी विश्वातीत है। वह निर्गुण होते हुए भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। वह ईश्वर एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। वेदों में भी 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता श्यत्यचक्षः स श्रुणोत्यकर्णः' कहा गया है। पुरुष सूक्त में 'सहस्रशीर्षा' पुरुष कहा गया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान् ने स्वयं ही कहा है कि मेरे स्वरूप को देवता भी नहीं जानते क्योंकि मैं उनका भी आदि कारण हूँ। सभी महर्षिगण, चतुर्दश मनु आदि समस्त भगवान् से ही उत्पन्न होता है। अर्जुन के द्वारा पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान् कहते है कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। मैं सभी प्राणियों का आदि मध्य और अन्त हूँ। आदित्यों में मैं विष्णु हूँ, ज्योतिष में मैं सूर्य हूँ, नक्षत्रों में मैं चन्द्र, देवताओं में मैं इन्द्र, रूद्रों में मैं शंकर हूँ और वायु में मैं मरीचि हूँ। इस प्रकार भगवान् ने कृपा करके अर्जुन को निर्देशित किया और सम्पूर्ण जगत्वासियों को स्वयं प्राप्ति का सुगम मार्ग बता दिया। श्रीकृष्ण भगवान् ने बताया कि जो लोग मुझमें चित्त को अर्पण करके भक्ति से मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे पाने में समर्थ होते है। गीता के चालीसवें श्लोक में भगवान् ने अपनी दिव्य विभूतियों के विस्तार को अनन्त बतलाकर इस प्रकरण को समाप्त किया है।

3.2.11 विश्वरूपदर्शन योग

गीता के एकादश अध्याय का नाम 'विश्वरूपदर्शन योग' है। यह अध्याय 55 श्लोक में समाप्त है। अर्जुन ने भगवान् से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके भगवान् के जिस विश्वरूप के दर्शन किये थे, उसके वर्णन को पढ़–सुनकर भगवान् के प्रभाव को मान लेने से भगवान् के साथ योग का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'विश्वरूपदर्शन योग' है।

इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने कहा है कि भगवान् मैं आपके रूप को देखना चाहता हूँ। इसमें प्रथम श्लोक से लेकर चतुर्थ तक अर्जुन ने भगवान् की और उनके उपदेशों की प्रशंसा करके भगवान् से विश्वरूप के दर्शन कराने के लिए अनुनय–विनय की है। इसके बाद भगवान् ने प्रसन्न होकर अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया। किन्तु स्थूल नेत्रों से भगवान् के स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता था। इन स्थूल नेत्रों से केवल सांसारिक पदार्थ ही देखे जा सकते हैं। इसलिए भगवान् ने अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान किए थे और इन दिव्य चक्षुओं से अर्जुन ने भगवान् के विश्वरूप का दर्शन प्राप्त किया। जिस रूप को देखकर मनुष्य परमगति को प्राप्त होते हैं। दसवें श्लोक से तेरहवें श्लोक तक अर्जुन को कैसा रूप दिखाई दिया, इसका वर्णन किया गया है। यह संसार ब्रह्मा का विराट शरीर है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी कहा गया है कि – सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्...। इस सूक्त से भी पता चलता है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड उन्हीं का विराट रूप है। इस कारण से वह विश्वरूप है। वेदान्तदर्शन में भी कहा है कि ऐसे विराट रूप भगवान् के दर्शन हो जाने पर –

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। **वेदान्तदर्शन**

ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाता है। श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को जिस दिव्य रूप का दर्शन कराया था वह यथार्थ में बहुत ही अद्भुत, अनिर्वचनीय और अभूतपूर्व था। यह विश्वरूप पूर्ण, सर्वव्यापी आदि मध्य अन्त से रहित तथा ज्योतिर्मय है। फिर सम्पूर्ण विश्व के जन्म और स्थिति – लय भी उन्हीं में ही हो रहें हैं। भगवान् ने इस विश्वरूप को देखाकर अर्जुन को आश्वासन दिया कि ''जिस विश्वरूप का तुमने दर्शन किया है वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।'' मेरा यह रूप एक निष्ठभक्ति के बिना कोई भी नहीं देख सकता। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। इसलिए मेरे इस विश्वरूप का दर्शन तुम्हें हो सका है। श्रीकृष्ण ने कहा ''मैं ही तुम्हारे लिए परमगति हूँ और समस्त कार्यों का कर्ता मैं ही हूँ और सारे कर्म मेरे ही हैं, यदि ऐसा समझकर तुम अनासक्त भाव से युद्धादि समस्त कर्म करते रहो'' यही श्रीकृष्ण भगवान् का उपदेश है। यदि कुछ प्राप्त करना अभीष्ट हो तो मांगना भी अति आवश्यक होता है। जब तक अर्जुन ने पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के पास जाकर 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।', ऐसा प्रार्थना नहीं की थी जतब तक भगवान् ने अपना अव्यय आत्मस्वरूप प्रकट नहीं किया था।

3.2.12 भक्ति योग

भगवद्गीता के द्वादश अध्याय में बीस श्लोक है। यह अध्याय भक्ति के साधन के पथ निर्देश के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में अनेक प्रकार के साधनों भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग सहित भगवद्भक्ति का वर्णन करके भक्तों के लक्षण बतलाए गऐ है और इस अध्याय का उपक्रम तथा उपसंहार भी भगवद्भक्ति में ही हुआ है। केवल तीसरे, चौथे और पाँचवें – इन तीन श्लोकों में ज्ञान के साधन का

वर्णन हुआ है, परन्तु वह भी भक्ति ओर ज्ञान की परस्पर तुलना करके भक्ति को श्रेष्ठ बतलाने के लिए ही है। इसलिए इस अध्याय का नाम 'भक्तियोग' रखा गया है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन का प्रश्न है कि सगुण–साकार, निर्गुण–निराकार के उपासकों में कौन–सा सहज या श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यद्यपि दोनों ही मार्गों का उद्देश्य एक ही है तो भी सगुण ब्रह्म उपासना या भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। इस भक्तिमार्ग के भी अनेक उपाय है। उनमें भी भक्ति से युक्तं निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ होते हैं। जो मनुष्य भक्ति के मार्ग का सहारा लेकर, इन्द्रियों को संयमित करते हुए तथा सर्वत्र समत्व बुद्धि युक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मभाव देखता है, वही परमात्मा को प्राप्त करते हैं। इस अध्याय में विशेष रूप से भक्तिमार्ग का ही सहारा लेकर ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि हे अर्जुन। सब कर्मों को मुझमें अर्पण करके अनन्य भाव से एक मेरा ही चिन्तन करो और ऐसा करने पर मैं स्वयं भक्तों का उद्धार करता हूँ। इस अध्याय में श्लोक 13 से 19 तक भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षण बतलाये है और बीसवें श्लोक में उन ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षणों को आदर्श मानकर श्रद्धापूर्वक वैसा ही साधन करने वाले भक्तों को अत्यन्त प्रिय बतलाया है।

3.2.13 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग

गीता के त्रयोदश अध्याय का क्षेत्रक्षेत्रविभागयोग है जो कि 35 श्लोकों में वर्णित है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों बिल्कुल ही अलग है। अज्ञानता के कारण दोनों में एकता दिखाई पड़ती है। क्षेत्र अर्थात् शरीर जड़, विकारी, नाश्वान तथा क्षणिक है। वहीं क्षेत्रज्ञ इससे विपरित चेतन, अविकारी, निर्विकारी, नित्य तथा अविनाशी है। इस अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों के स्वरूप का भेद वर्णन किया गया है। इसलिए इस अध्याय का नाम क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग रखा गया है। इसके अन्तिम श्लोक के विषय में आचार्य शंकर ने लिखा है कि इस श्लोक से अध्याय का सार और मर्म का पता चलता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा के भेद दर्शन से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। देह और आत्मा को एक समझना ही समस्त बन्धनों का कारण है और इसका अलग–अलग समझना ही आत्मज्ञान है। ''जब तक देह बुद्धि है, तभी तक सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु तथा रोग–शोक है ये सब देह को ही होता है, आत्मा को नहीं। 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति होने के बाद सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु आदि स्वप्न की तरह मिथ्या प्रतीत होते हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यह भेदज्ञान ही 'यथार्थज्ञान' है। वहीं परमात्मा का ज्ञान ब्रह्मज्ञान है। योग मार्ग के अवलम्बन से ध्यान, धारण और समाधि और अनात्मा के विचार से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

3.2.14 गुणत्रयविभाग योग

गीता के चतुर्दश अध्याय कुल 27 श्लोक में वर्णित है। इस अध्याय में प्रकृति के त्रिगुण सत्व, रजस, तमस के स्वरूप और उनके कार्य कारण और शक्ति का वर्णन किया है। सांख्य में भी ''गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः'' कहा गया है। जीवात्मा को बन्धन में बाँधने और अज्ञान से उस आत्मा को ढकने का मुख्य कार्य त्रिगुण ही करते हैं। इन त्रिगुणों से जब मनुष्य छूट जाता है तब वह परमपद को प्राप्त कर लेता है। सत्व, रजस, तमस इन तीन गुण और त्रिगुणों से अतीत त्रिगुणातीत अवस्था ही इस

अध्याय में विशेष रूप से वर्णित हुए है। इसलिए इस अध्याय का नाम 'गुणत्रयविभाग योग' है।

इन तीनों गुणों से अतीत होकर ईश्वर को प्राप्त करने वाले मनुष्य का क्या लक्षण है ? इन्हीं त्रिगुणों से सम्बन्धित बातों का विवेचन किया गया है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि ''मेरी एक निष्ठभाव से भक्तियोग के द्वारा त्रिगुणातीत होकर सेवा करने से ही ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती हैं क्योंकि मैं ही एक ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ।'' श्रीकृष्ण कहते हैं कि पराभक्ति और ब्रह्मभाव एक ही होता है क्योंकि दोनों से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। यह सम्पूर्ण दिखाई देने वाला और दिखाई नहीं देने वाला ब्रह्माण्ड प्रकृति का ही परिणाम हैं। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ईश्वर को प्राणियों का पिता और प्रकृति को माता कहा गया है। 5वें श्लोक से 18वें श्लोक तक सत्व, रजस और तमस तीनों गुणों का क्रम से बताया गया है। जो गुण जिस मनुष्य में ज्यादा मात्रा में होता है उसी के अनुरूप ही उसका स्वरूप निर्धारित होता है। सत्वगुण श्वेत रंग का होता है। सत्वगुण सुखात्मक और ज्ञानवर्धक होता है। तृष्णा और आसक्ति को पैदा करने वाला रजोगुण है। यह रागात्मक होता है। इसकी बुद्धि से लोभ, काम प्रवृत्ति, विषय–वासना आदि उत्पन्न होती है। यह लाल रंग का होता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। तमोगुण प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बांधता है। तमोगुण की वृद्धि होने पर विवेक का नाश होता है, उद्यम का अभाव तथा बुद्धि का विपर्यय होता है। इसका रंग काला होता है। जिस व्यक्ति में तमोगुण ज्यादा होता है। वह तामसिक प्रवृति का मनुष्य कहलाता है। तीनों गुणों के एक होने पर जो गुण – एक दूसरे को दबाकर प्रबल हो जाता है उसी गुण की प्रबलता मानी जाती है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन को निस्त्रैगुण्य होने का आदेश देकर नित्य सत्वस्थ होने के लिए कहते हैं। इसका आशय यह है कि तीनों गुणों का समाहार होने से ही विशुद्ध सत्ता का उदय होता है।

इस अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण भगवान् ने त्रिगुणातीत अवस्था के जो लक्षण बताये हैं वह अति दुर्लभ है। त्रिगुणातीत होना या मायातीत होना या ब्रह्मभाव प्राप्ति सब एक ही है। इस प्रकार स्थित प्रज्ञ और त्रिगुणातीत अवस्था एक ही है। इसके पश्चात् अन्तिम सत्ताइसवें श्लोक में ब्रह्म, अमृत, अव्यय आदि भगवान् के स्वरूप होने से अपने को इन सबकी प्रतिष्ठा बतलाकर अध्याय का उपसंहार करते हैं।

3.2.15 पुरुषोत्तम योग

गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय 20 श्लोकों में वर्णित है। इस अध्याय का नाम 'पुरुषोत्तम योग' है। इस अध्याय में सम्पूर्ण गीता शास्त्र का भाव व्यक्त किया है। सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता, सर्वशक्तिमान, सबको नियत्रित करने वाला, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी, परमदयालु, शरण लेने योग्य, सगुण परमेश्वर परम पुरुषोत्तम ईश्र के गुण प्रभाव और स्वरूप का वर्णन किया गया है, इसी अध्याय में क्षर पुरुष (क्षेत्र) अक्षर पुरुष (क्षेत्रज्ञ) और पुरुषोत्तम तीनों का वर्णन किया गया है। 'क्षर' और 'अक्षर' से भगवान् किस प्रकार श्रेष्ठ हैं ? और कैसे सबसे उत्तम हैं ? पुरुषोत्तम कहे जाते हैं ? पुरुषोत्तम कहने के पीछे क्या माहात्म्य है ? इन सबका उत्तर इसी अध्याय में विस्तृत रूप से मिलता है और इतना ही नहीं समस्त वेदों का अर्थ भी इस अध्याय में संक्षेप में बताया गया है। ''जो उन्हें जानता है, वहीं वेदज्ञ है'',। भगवान् ने स्वयं कहा है – मैं क्षर से परे और अक्षर (कूटस्थ) से भी उत्तम हूँ। इसी कारण वेद में तथा इस लोक में मैं पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। इस पुरुषोत्तम भगवान को जानने से ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

उसको यह ज्ञान हो जाता है कि वह सगुण और निर्गुण भी है, निराकार, साकार भी है। जब भक्तों को कष्ट होता है तब भगवान् अवतार रूप में अवतरित होते हैं। आगे यह भी कहा गया है कि यह पुरुषोत्तम तत्व अत्यन्त गोपनीय है और बिना ईश्वर की कृपा के कोई भी इसे समझ नहीं सकता है।

आगे भगवान् कहते हैं कि जीव मेरा ही सनातन अंश है। हर मनुष्य कर्मों के फल के अनुसार ही सत् या असत् योनियों में जन्म लेकर सुख–दुखादि को भोगता है। जो ब्रह्म को जानता है उसे यह ज्ञान होता है कि ब्रह्म त्रिगुण से परे है और इन त्रिगुणों से निर्लिप्त है। इस पुरुषोत्तम को श्रुतियाँ भी परम ब्रह्म, परम पुरुष और पूर्व भगवान् मानती है। इनके दर्शन से ही मनुष्य चिरमुक्त हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में भी लिखा है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। मुण्डकोपनिषद्

अर्थात् आत्मा स्वरूप भगवान् का दर्शन करते ही आत्मज्ञानी व्यक्ति की हृदय की ग्रन्थि छिन्न–भिन्न हो जाती है और समस्त संदेह दूर हो जाते हैं और जन्म–जन्मान्तर के समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। इस पुरुषोत्तम के सम्बन्ध में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का मंत्र है –

''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।'' पुरुषसूक्त मन्त्र 1

श्रीमद्भगवत् में ही इन्हीं पुरुषोत्तम की उपासना की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कहा गया है –

वसुदेव परा वेदा, वसुदेव परा मुखाः।
वसुदेव परा योगा, वसुदेव पर क्रियाः।।
वसुदेव परं ज्ञानं, वसुदेव परं तपः।
वसुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः।। श्रीमद्भागवत पुराण

इस प्रकार वसुदेव ही मनुष्यों की परमगति है और यही समस्त वेदों का एक मात्र प्रतिपाद्य विषय है।

3.2.16 ''दैवासुरसम्पद्विभाग योग''

गीता के षोडश अध्याय में 24 श्लोक वर्णित है। इस अध्याय में दैव तथा आसुरी सम्पत्तियों का विभाग किया गया है। इसी कारण इस अध्याय का नाम ''दैवासुरसम्पद्– विभागयोग'' है। क्योंकि इस अध्याय में जो दोनों सम्पत्तियों का वर्णन हुआ है, वह परस्पर एक–दूसरे से बिल्कुल अलग है अर्थात् देवी–सम्पत्ति कल्याण करने वाली है आसुरी सम्पत्ति बांधने वाली तथा नीच योनियों और नरकों में ले जाने वाली है, जो साधक इन दोनों विभागों को ठीक रीति से जान लेगा, वह आसुरी सम्पत्ति का सर्वथा त्याग कर देगा और आसुरी सम्पत्ति स्वतः प्रकट हो जाएगी। दैवी सम्पत्ति प्रकट होते ही एकमात्र परमात्मा से सम्बन्ध रह जाएगा।

श्री भगवान् ने दैवीय सम्पत्ति के अन्तर्गत 26 सात्विक गुणों का वर्णन किया है जैसे – चित्रशुद्धि, सत्य, अक्रोध, आत्मज्ञान में निष्ठा, त्याग शान्ति, लज्जा, चंचलता का अभाव,

जीवों पर दया, क्षमा, धैर्य, शौच, अहंकार, अहिंसा, सत्यता आदि दैवी सम्पदाएँ है। जो मनुष्य पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप दैवी सम्पदा के अधिकारी पात्र होकर जन्में है वे ही इन 26 सात्विक गुणों के अधिकारी होते हैं। जो मनुष्य दैवी सम्पत्ति से युक्त होते हैं वही मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। आसुरी सम्पत्तियाँ दर्प, दम्भ, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता, अज्ञान आदि हैं जो मनुष्य इन आसुरी सम्पत्ति को लेकर जन्म लेते हैं वे सदैव दुःख को भोगते रहते हैं। ये मनुष्य दुर्गुणी और दुराचारी होते हैं। उनके लिए संसार ही बन्धन का कारण है। असुर प्रकृति वाले मनुष्य पाप–पुण्य, अर्ध–अधर्म तथा कामोपभोग को ही जीवन का परम पुरुषार्थ समझते है और प्राणियों का अनिष्ट करते है। इस प्रकार असुर प्रकृति के मनुष्य अधर्म का आचरण करके अधोगति को प्राप्त करते हैं और उनकी मुक्ति का कोई उपाय नहीं करता है।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने मानों अर्जुन को लक्ष्य करके सम्पूर्ण सृष्टि को यह बता रहे हैं कि काम, क्रोध और लोभ ये तीनों ही आसुरी स्वभाव का मूल कारण है। ये सभी अनर्थों का मूल द्वार है। इसलिए काम–क्रोध और लोभ इन तीनों का परित्याग करके श्रेय मार्ग को ही अपनाना चाहिए और शास्त्र में बताए कर्त्तव्यों को करके अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए।

3.2.17 श्रद्धात्रयविभाग योग

गीता के सप्तदश अध्याय में 28 श्लोकों है। अर्जुन के प्रश्न करने पर श्री भगवान् ने यहाँ विविध प्रकार की श्रद्धा का विशेष रूप से वर्णन किया है। इस अध्याय में श्रद्धा के तीन विभाग किये गये हैं – सात्विकी श्रद्धा, राजसी श्रद्धा और तामसी श्रद्धा। इस विभाग को जो ठीक–ठीक जान लेगा, वह सात्विकी श्रद्धा का ग्रहण और राजसी–तामसी श्रद्धा का त्याग कर देगा। राजसी और तामसी श्रद्धा का त्याग करते ही सात्विकी श्रद्धा से भगवान् के साथ स्वतः सिद्ध नित्य–सम्बन्ध का अनुभव हो जाएगा। इसलिए इस अध्याय का नाम श्रद्धात्रय–विभागयोग रखा गया है। इस अध्याय में त्रिविध श्रद्धा के अतिरिक्त त्रिविध आहार, त्रिविध तप, त्रिविध यज्ञ, त्रिविध दान आदि में विशेष रूप से बतलाया गया है। इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने श्री कृष्ण से श्रद्धायुक्त पुरुषों की निष्ठा पूछी है। उसके उत्तर में भगवान् ने तीन प्रकार की श्रद्धा को बताते हुए श्रद्धा के अनुसार ही निष्ठा बतलायी हैं। फिर पूजा, यज्ञ, तप आदि में श्रद्धा का सम्बन्ध बतलाते हुए इसके अन्तिम श्लोक में श्रद्धारहित पुरुषों के कर्मों को असत् बतालाया गया है। सत्व, रजस, तमस के भेद से मनुष्य की त्रिविध प्रकृति या अन्तःकरण वृत्ति उत्पन्न होती है। सात्विक श्रद्धा से युक्त मनुष्य देवताओं की पूजा करते हैं। राजसिक प्रकृति के मनुष्य कामना युक्त चित्त से यज्ञ, राक्षस आदि की पूजा करते हैं। फिर तामसिक मनुष्य रोग मुक्ति आदि की इच्छा से भूत–प्रेत आदि की उपासना करते है। कर्मों की त्रिविध स्थितियों का वर्णन भी शास्त्रों में मिलता है –

1. प्रारब्ध कर्म – जिसका भोग चल रहा है।
2. क्रियमाण कर्म – जो भोगकाल में किया जा रहा है।
3. संचित कर्म – जो अभी फल देने में प्रवृत्त नहीं हुआ है।

प्रत्येक जीवन को इन तीनों कर्मों का क्षय करके ही करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने–अपने प्रारब्ध कर्मों के भोग के लिए जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार ईश्वर केवल मनुष्य के कर्मफल भोग की व्यवस्था कर देते है जिस कारण वे अपने–अपने कर्मों का फल भोग करके मुक्ति के मार्ग में आगे बढ़ सके।

3.2.18 मोक्षसंन्यास योग

गीता का अष्टादश अध्याय 78 श्लोकों में रचित है। यह गीता का अन्तिम तथा महत्वपूर्ण अध्याय है। सम्पूर्ण गीता में श्लोकों की संख्या की दृष्टि से यह अध्याय सबसे बड़ा है। इस अध्याय के 73वें श्लोक तक श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद है तथा बाकी पाँच श्लोक संजय द्वारा कहे गए हैं। इस प्रकार आलोचित विषय वस्तु की दृष्टि से भी यह अध्याय श्रेष्ठ है। इसमें समस्त गीता शास्त्र की आलोचना का उपसंहार करके मानव जीवन का परम आदर्श और मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसका वर्णन किया गया है। जिसमें मोक्ष का भी संन्यास अर्थात् त्याग हो जाता है, ऐसी भगवद् भक्ति का वर्णन मुख्य होने के कारण इस अध्याय का नाम मोक्ष संन्यास योग रखा गया है। अर्जुन संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक–पृथक जानना चाहते थे। इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं कि काम्य कर्म का त्याग ही संन्यास है और सारे कर्मों के फल मात्र का त्याग ही यथार्थ संन्यासी है। कर्मफल का त्याग करके अपने स्वधर्म का अनुष्ठान करना ही मुख्य विषय है। भगवान् अपना अन्तिम उपदेश देते हुए कहते हैं कि –

''मन से अपने समस्त धर्म–कर्म मुझे सौंप कर हमेशा मुझमें अपना मन रखो और अपने अधिकार के अनुसार स्वधर्म का पालन करो, तुम उसी से मेरी प्रसन्नता को पाकर मुक्त हो जाओगे। क्योंकि ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य माया से मुक्त हो ही नहीं सकता। श्री भगवान् अर्जुन को गीता का गुह्तम उपदेश देते हुए कहते हैं – तू एकमात्र मेरा भक्त हो जा, अपना मन मेरे में लगा लो, एकमात्र मेरी ही भक्ति, पूजा करो, मुझे ही नमस्कार करो कि ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त हो जाओगे। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। सब धर्मों का परित्याग करके तू केवल मेरी शरण में आ जा, मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से, बन्धनों से चिरकाल के लिए मुक्त कर दूंगा।''

श्रीकृष्ण जी ने एक छोटी सी बात से सारे उपदेशों का उपसंहार कर दिया –

''अहं त्व सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'' श्लोक 66

इस प्रकार भगवान् की करूणामय मूर्ति को देखकर अर्जुन का संदेह दूर हो गया है और वह विनम्रता और कृतज्ञता के साथ कहता है कि हे भगवान् –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। श्लोक 73

आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गई है। मैं सन्देह रहित होकर अपनी आज्ञा का पालन करूंगा। ब्रह्मज्ञान के बाद जो अवस्था प्राप्त होती है वह अवस्था अर्जुन को सहज ही प्राप्त हो जाती है।

3.3 सारांश

गीता के अष्टादश अध्यायों में सर्वप्रथम अर्जुन विषाद योग है जिसमें अर्जुन को मोह पैदा हो जाता है और वह युद्ध करने के लिए मना कर देता है। तब श्रीकृष्ण अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मयोग को बताते हुए कहते हैं कि निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों के संयोग होने पर परमलक्ष्य स्थितप्रज्ञ एवं आत्मस्वरूप साक्षात्कार को प्राप्त होता है। इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। आगे भगवान ने कर्त्तव्य कर्म करने की श्रेष्ठ विधि बताई कि विवेकपूर्ण सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके तथा निष्काम, ममता रहित होकर, सन्ताप रहित होकर शास्त्रों में बताए

कर्त्तव्य कर्म को करना चाहिए। आगे बताया की कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान अलग–अलग न होकर बल्कि एक–दूसरे के सहायक है। द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ उत्तम है। आगे कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग की श्रेष्ठता बताते हुए भगवान् कहते हैं कि जो भक्तयोगी सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कर्म करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता और जो कर्मयोगी है वह आसक्ति का त्याग करके केवल इन्द्रियाँ, शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं। जो व्यक्ति कर्मफल के बारे में न सोचकर केवल अपना कर्त्तव्यकर्म करता है वहीं संन्यासी तथा योगी है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है तथा स्वयं ही अपना शत्रु भी है। भगवान् ने 17 विभूतियों के रूप में कारणवश से अपनी व्यापकता बताई है। इसमें भगवान् के विमुख और सम्मुख होने का वर्णन है। जो जड़ता से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जाते हैं तो वे सगुण– निराकार, निर्गुण निराकार और सगुण साकार ऐसे भगवान के समग्ररूप को जानकर अन्त में भगवान् को ही प्राप्त कर जाते है। इन तीनों स्वरूपों में से किसी भी स्वरूप का चिन्तन करने से परमात्मा के साथ योग हो जाता है। अन्तिम समय में जो भगवान् को याद करता है वह उस ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की सबसे बड़ी विभूति यह है कि वह विश्वानुगत होकर भी विश्वातीत है। निर्गुण रूप होते हुए भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। अर्जुन ने भगवान् से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके भगवान् के विश्वरूप के दर्शन किए थे। भगवान् ने बताया कि निर्गुण और सगुण उपासकों में से सगुण उपासक श्रेष्ठ है, और उनमें से भी निष्काम कर्मयोगी ही श्रेष्ठ होते हैं। जो भक्त इन्द्रियों को संयमित करते हुए तथा सर्वत्र समत्व बुद्धि युक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मभाव देखता है, वही परमात्मा को प्राप्त करते है। देह और आत्मा को एक समझना ही समस्त बन्धनों का कारण है तथा इन्हें अलग–अलग समझना ही आत्म ज्ञान है। श्रीकृष्ण के द्वारा इसमें सत्व, रजस और तमस इन तीनों गुणों के बारे में विस्तार से बताया गया है। भगवान् को पुरुषोत्तम भी कहा गया है। दैवीय सम्पत्ति कल्याण करने वाली होती है तथा आसुरी सम्पत्ति बन्धन में बांधने वाली होती है फिर त्रिविध श्रद्धा, त्रिविध आहार, त्रिविध तप, त्रिविध यज्ञ तथा त्रिविध दान के विषय में बतलाया है और अन्त में मोक्ष का उपदेश देते हुए अर्जुन से कहते हैं कि तू एकमात्र मेरा भजन कर मुझ में अपना मन लगा लो, मुझे ही नमस्कार करके मेरी ही भक्ति पूजा करो, तो निश्चय ही तुम मुझे प्राप्त कर लोगे।

बोध प्रश्न

नीच दिये गये कथनों में से सत्य (√) तथा असत्य (×) कथन का चयन कीजिए।

1. सम्पूर्ण भगवद्गीता अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है ( )
2. कौरवों के पास सप्त अक्षौहिणी सेना है। ( )
3. द्वितीय अध्याय में 72 श्लोक है। ( )
4. पञ्चम अध्याय का नाम सांख्ययोग है। ( )
5. फल की आसक्ति ही मोक्ष है। ( )
6. विभूतियोग दसवें अध्याय का नाम है। ( )

अभ्यास प्रश्न

1 गीता के अष्टादश अध्यायों के नाम लिखिए ?

2 आत्मा की अमरता के बारे में लिखिए ?

3 दैवी सम्पत्ति व आसुरी सम्पत्ति क्या होती है व उनके नाम लिखिए ?

4 अर्जुन की शोकाकुल अवस्था का मुख्य कारण क्या था ?

5 कर्मयोग क्या है, बताइए ?

6 मोक्ष की अवस्था कैसी होती है ? लिखिए।

7 ''ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते''। श्लोक की व्याख्या कीजिए।

3.4 शब्दावली

संख्ये – युद्ध भूमि में

विमृज्य – एक ओर रखकर

वासांसि – वस्त्रों को

जीर्णानि – पुराने तथा फटे

विहाय – त्याग कर

गृहणाति – ग्रहण करता है

छिन्दन्ति – खण्ड–खण्ड कर सकते हैं

शस्त्राणि – हथियार

दहति – जला सकता है

पावक – अग्नि

मारूतः – वायु

कमफलहेतुर्भूर्मा – कर्मफल का कारण कभी मत होओ

संगोऽस्त्वकर्मणि – कर्म न करने में आसक्त होओ।

संस्पर्शजा – भौतिक इन्द्रियों के स्पर्श से उत्पन्न

आद्यन्तवन्तः – प्रारम्भ, अन्त वाले

स्थानमुपैति – धाम को प्राप्त करता है

क्षीयन्ते – दूर हो गए सारे संशय

स्मृतिलब्धा – स्मरण शक्ति पुनः प्राप्त हुई

त्वत्प्रसादान्मयाच्युत – आपकी कृपा से मेरे द्वारा, हे अच्युत कृष्ण।

3.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

5. असत्य 6. सत्य

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1	श्रीमद्भगवतगीता	–	साधक संजीवनी हिन्दी टीका, गीताप्रेस गोरखपुर
2	श्रीमद्भगवद्गीता	–	महात्म्यसहित, गीताप्रेस गोरखपुर
3	श्रीमद्भगवद्गीता	–	यथारूप – स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
4	सांख्यकारिका	–	ईश्वर कृष्ण व्याख्या– राकेश शास्त्री
5	वेदान्तसार	–	सदानन्द – साहित्य भण्डार, मेरठ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY